संगति

भाग – ११

ईश्वरीय सृष्टि के दो 'मंडल' हैं –

1. **'ब्रह्म मंडल'** अथवा आत्मिक मंडल
2. **'मायिकी त्रि-गुण मंडल'**

ये दोनो मंडल कोई अलग-अलग स्थूल (physical) टापू, विलक्षण देश या ग्रह (planets) नहीं है।

'ब्रह्म मंडल' का अस्तित्व —

सत्य
अविचल
अपार
स्वंयभू
प्रकाशमय
रहस्यमय
प्रेम-स्वैपना
प्रिम-रस
'चुप-प्रीत'
'शान्त रूप'
'सहज'
विस्मादी
'अनहद' झुनकार

वाला है ।

अपिउ पीअउ अकथु कथि रहीऐ ।।
निज घरि बैसि सहज घरु लहीऐ ।। (पृ-२२७)

सहज सिफति भगति ततु गिआना ।।
सदा अनंदु निहचलु सचु थाना ।।
तहा संगति साध गुण रसै ।।
अनभउ नगरु तहा सद वसै ।। (पृ-२३७)

बेगम पुरा सहर को नाउ ।। दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ ।।
नां तसवीस खिराजु न मालु ।। खउफु न खता न तरसु जवालु ।।१।।
अब मोहि खूब वतन गह पाई ।। ऊहां खैरि सदा मेरे भाई ।।१।। रहाउ ।।
काइमु दाइमु सदा पातिसाही।। दोम न सेम एक सो आही ।।
आबादानु सदा मसहूर।। **ऊहां गनी बसहि मामूर** ।।२।।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै ।। मरहम महल न को अटकावै ।।
कहि रविदास खलास चमारा।। **जो हम सहरी सु मीतु हमारा** ।।३।।
(पृ३४५)

इन्ह बिधि नगरु वुठा मेरे भाई ।।
दुरतु गइआ गुरि गिआनु द्रिड़ाई ।। .....
सांति सहज सुख के सभि हाट ।।.....
सो वसै इतु घरि जिसु गुरु पूरा सेव ।।
अबिचल नगरी नानक देव ।। (पृ-४३०)

अबिचल नगरु गोबिंद गुरू का
नामु जपत सुखु पाइआ राम ।। (पृ-७८३)

मायिकी त्रिगुण मंडल :-

अनुभवी ज्ञान के **'अभाव'** अथवा **अज्ञानता के भ्रम-भुलाव में ही इस मायिकी मंडल का अस्तित्व 'प्रतीत' होता है।**

इसका अपने आप में **कोई अस्तित्व नहीं है।**

दूसरे शब्दों में **मायिकी मंडल का 'अस्तित्व'** हमारे भ्रांतिपूर्ण ख्यालों, मनोभावों, **भावनाओं, धारणाओं** पर निर्भर है।

जिस प्रकार सूरज उदय होने पर रात का **'अन्धकार' स्वयं अलोप हो**

जाता है, उसी प्रकार हमारी अन्तर-आत्मा में **'नाम' का प्रकाश होने पर मायिकी मंडल की अज्ञानता का 'अंधकार' भी स्वयं अलोप हो जाता है।** तथा आत्म मंडल का **'प्रकाश' ही रह जाता है।**

दीवा बलै अंधेरा जाइ ।।
बेद पाठ मति पापा खाइ ।।
उगवै सूरु न जापै चंदु ।।
जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु ।। **(पृ.-७९१)**

भम्र भै बिनसि गए खिन भीतरि अंधकार प्रगटे चानाणु ।।

(पृ.-८२५)

अगिआनु अंधेरा मिटि गइआ गुर चानणु गिआनु चरागु ।।

(पृ.-८४९)

जिह मंदरि दीपकु परगासिआ अंधकारु तह नासा ।।
निरभउ पूरि रहे भ्रमु भागा कहि कबीर जन दासा ।। **(पृ.-११२३)**

त्रिगुण मायिकी मंडल का **'विराट नाटक' चलाने के लिए 'अहम्' का प्रवेश किया गया,** जिसमें से **'मायिकी मंडल'** की उत्पत्ती हुई । इस त्रिगुण **भ्रम-भुलाव में ही सारी दुनिया प्रवृत्त है** तथा इस **'विराट नाटक' में पलच-पलच कर अपनी ईश्वरीय 'विरासत' अथवा स्त्रोत को 'भूल' बैठी है।**

जिनि रचि रचिआ पुरखि बिधातै **नाले हउमै पाई** ।। (पृ-९९९)

जिन्ही नामु **विसारिआ दूजै भरमि भुलाई ।।**
मूलु छोडि डाली लगे किआ पावहि छाई ।। (पृ-४२०)

ककै कामि क्रोधि भरमिओहु मूड़े
ममता लागे तुधु हरि विसरिआ ।। (पृ ४३५)

बिखु फल संचि भरे मन ऐसे परम पुरख प्रभ मन बिसरे ।।

(पृ४८७)

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ।। (पृ ८५७)
एह माइआ जितु हरि विसरै
मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ।। **(पृ. ९२१)**
निरभउ नामु विसारिआ नालि माइआ रचा ।। (पृ १०९९)

मनु माइआ मै फधि रहिओ **बिसरिओ गोबिंद नामु ।।** (पृ १४२८)

इन दोनों मंडलों के **वासी अथवा 'जीव'** मुख्य रूप से **तीन श्रेणियों** में बाँटे जा सकते हैं —

1. **मायिकी मंडल के वासी —**

ऐसे प्राणी अहम् के भ्रम-भुलाव में दृष्टमान, भ्राममयी दुनिया को ही **सच, वास्तविक तथा पूर्ण समझे हुए हैं** तथा इस में ही गलतान होकर पलच-पलच कर जीवन व्यतीत करते हैं। इन को अन्य किसी उत्तम, सुंदर, सुहावने, सुखदायी दैवीय **मंडल का ज्ञान ही नहीं ।** ये लोग **'ईश्वर के अस्तित्व से भी इन्कार करते हैं ।**

ऐसे मायिकी भ्रम-भुलाव में गलतान हुए मनुष्यों को गुरबाणी में **'नास्तिक' 'मनमुख' तथा 'साकत' कहा गया है ।**

साकत हरि रस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे।। (पृ. १३)
मनमुख दूजै पचि मुए ना बूझहि वीचारा ।। (पृ. १४१)

साकत की ऐसी है रीति ।।
जो किछु करै सगल बिपरीति ।। (पृ. १९५)

मनमुख मूलहु भुलिआ विचि लबु लोभु अहंकारु ।।
झगड़ा करदिआ अनदिनु गुदरै सबदि न करहि वीचारु ।। (पृ. ३१६)

मनमुख भूले बिखु लगे अहिला जनमु गवाइआ ।।
हरि का नामु सदा सुख सागरु साचा सबदु न भाइआ ।। (पृ.५६५)

साकत मूड़ माइआ के बधिक
विचि माइआ फिरहि फिरंदे ॥ (पृ. ८००)

अंम्रितु कउरा बिखिआ मीठी ॥
साकत की बिधि नैनहु डीठी ॥
कूडि कपटि अंहकारि रीझाना ॥
नामु सुनत जनु बिछूअ डसाना ॥ (पृ. ८९२-९३)

ऐसे प्राणी अपनी मनोकल्पित **'सभ्यता' के दायरे के** अंदर ही परस्पर मेल-मिलाप, व्यवहार, आदान-प्रदान, कर्म-काण्ड आदि व्यवहार करते हैं। इकट्ठे हो कर ये लोग —

सभा (society)
सम्मेलन (conference)
समागम (seminar)
विचार गोष्ठियां (convention)

भी करते हैं — जिन्हें वे **'संगति' समझते हैं** । देखने, पढ़ने तथा सुनने में तो ये संस्थाएं (organisations) बहुत शोभायमान तथा प्रभावशाली लगती हैं — परन्तु ऐसे **'समूह' या संगति में 'अहम्' का 'बोल बाला' तथा व्यवहार होता है** — जिस कारण, इन संस्थाओं में कुछ **समय उपरान्त** —

ईर्ष्या-द्वेष
तनाव
स्वार्थ
नफरत
तअस्सुब
गुट बन्दी
वैर विरोध
लूट-खसोट
लड़ाईयाँ

आदि दोष अथवा 'कलंक' (scandals) **उभर आते हैं।**

क्योंकि इन **संस्थाओं, सभा-सुसाइटिओं अथवा 'संगति' की 'बुनियाद' ही 'कूड़े अहम्' पर आधारित होती है,** इसलिए सभा-सुसाइटियों के ऐसे समूह को **संगति, 'सत् संगति'** या **'साध संगति' नहीं कहा जा सकता ।**

वास्तव में **यह 'कुसंगति' ही है,** जो हमारे **अहम् को चारा डालती है तथा 'ईश्वरीय' अस्तित्व से नास्तिक करती है।**

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ।।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ।।
हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ।।.....
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ।।
मोख मुकति की सार न जाणा ।। (पृ ४६६)

हउमै विचि भगति न होवई हुकमु न बुझिआ जाइ ।।
हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ ५६०)

हंउमै अंदरि खड़कु है खड़के खड़कि विहाइ ।।
हंउमै वडा रोगु है मरि जंमै आवै जाइ ।। (पृ ५९२)

ये लोग 'ईश्वर' को 'ख्याली हऊआ' तथा 'धर्म' को **'मानसिक अफीम'** की **तुलना देते हैं** तथा परमार्थ का **मज़ाक उड़ाते हैं** । कुँए के मेंढक की भांति, इन 'नास्तिकों' का दिल और दिमाग, **ईश्वर की गैरहाज़री तथा धर्म के हानिकारक पक्ष को दर्शाने के लिए उक्तियों-युक्तियों की कलाबाजियों द्वारा ढकोसले घड़ता रहता है।** ये नास्तिकता का खुला प्रचार करते हैं जिसका **साधारण जनता पर हानिकारक प्रभाव बहुत शीघ्र होता है।**

हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि ।।
बातन ही असमानु गिरावहि ।। (पृ ३३२)
जिउ निगुरा बहु बाता जाणै ओहु हरि दरगह है भ्रसटी ।। (पृ. ५२८)

इसीलिए गुरबाणी में साकतों की **कुसंगति से बचने के लिए ताड़ना की गयी है** —

ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ
मन तिन कै निकटि न भिटीऐ ।। **(पृ. १७०)**

साकत संगु न कीजई पिआरे जे का पारि वसाइ ।।
जिसु मिलिऐ हरि विसरै पिआरे
सो मुहि कालै उठि जाइ ।। **(पृ. ६४१)**

साकत सिउ मन मेलु न करीअहु
जिनि हरि हरि नामु बिसारे ।। **(पृ. ९८१)**

कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि ।।
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ।। **(पृ. १३७१)**

2. आत्मिक मंडल के वासी :—

बख्शे हुए गुरमुख प्यारे जिनकी अन्तर-आत्मा में **'नाम' का प्रकाश हो जाता है अथवा गोबिंद गूंज उठता है ।**

ये 'सत पुरुष' सदा 'नाम' के **अनुभव प्रकाश में ईश्वरीय प्रेम-स्वैपना का रंग रस पान करते हैं ।** इन गुरमुख जनों, हरि जनों, संतों-भक्तों के अनुभव में **मायिकी दुनिया का अस्तित्व भ्रम-भुलाव, अस्थिर या झूठ प्रतीत होता है ।** इनके मन पर **'मायिकी रंगत'** का **प्रभाव ही नहीं होता।**

गुरमुखि अलिपतु रहै संसारे ।।
गुर कै तकीऐ नामि अधारे ।। (पृ. ११८)

उआ रस महि उआहू सुखु पाइआ ।।
नानक लिपत नही तिह माइआ ।। (पृ.२५९)

हरख सोग दुहहूं ते मुकते ।।
सदा अलिपतु जोग अरु जुगते ।।
दीसहि सभ महि सभ ते रहते ।।
पारब्रहम का ओइ धिआनु धरते ।। (पृ. १८१)

वरतणि जा कै केवल नाम ।।
अनद रूप कीरतन बिस्राम ।।
मित्र सत्रु जा कै एक समानै ।।
प्रभ अपुने बिनु अवरु न जानै ।। (पृ ३९२)

दीसहि सभ संगि रहहि अलेपा नह विआपै उन माई ।।
एकै रंगि तत के बेते सतिगुर ते बुधि पाई ।। (पृ ७०१)

मिथिआ करि माइआ तजी सुख सहज वीचारि।। (पृ८५७)

जितने नरक से मनमुखि भोगै गुरमुखि लेपु न मासा हे ।। (पृ.१०७३)

प्रेम भगति गुन गावन गीधे पोहत नह संसारु ।। (पृ१२२२)

गुरमुखि अलिपतु लेपु कदे न लागै सदा रहै सरणाई ।। (पृ. १३४४)

3. **उपरोक्त दर्शायी दोनो अवस्थाओं के बीच**, कई **'दोहरे मन वाले'** जीव होते हैं — जिन्हें किसी ओर भी पक्का निश्चय , भरोसा, श्रद्धा नहीं होती। उनका मन पारे की **तरह शीघ्र डोल जाता है।**

वास्तव में इन का मन तो पिछले संस्कारों अनुसार **माया में ही धंसा होता है।** पर जब कभी 'संगति' द्वारा इनके **मन को आत्मिक हिलोर आती है** तो वह भी, **'पानी के बुलबुले' समान क्षण-भंगुर ही होती है** तथा वे फिर अपने अभ्यास किये हुए निम्न रुचियों वाले **मानसिक प्रवाह में बह जाते हैं।**

इन की **'परमार्थ' पर श्रद्धा भावना भी** —

स्वार्थ के लिए

गरज की पूर्ति के लिए

दुखों से छुटकारे के लिए

रोगों के इलाज के लिए

तृष्णा की पूर्ति के लिए

पापों को छुपाने के लिए

यम से बचने के लिए

लोगों में वाह वाह कमाने के लिए

भले-भद्र बनने के लिए

धार्मिक नेता बनने के लिए

दिखावटी भक्त बनने

तक ही सीमित होती है, जिस लिए वे कई प्रकार के —

जादू-टोने

जंत्र-मंत्र

तावीज

पाठ-पूजा

दान

नेकियाँ

अरदास

मन्नत

कुरबानियाँ

कर्म-क्रिया

हठ्

योग-साधना

आदि, करके अपने मन को **'परमार्थी' होने की झूठी 'तसल्ली' देते हैं।**

दूसरे शब्दों में ये लोग 'परमात्मा', गुरुओं, अवतारों, देवी देवताओं से अनजाने ही **'सौदेबाजी' (**bargaining**) का व्यवहार करते हैं।**

यदि किसी एक साधू-संत-फकीर-औलीए की आराधना से उनकी **गरज पूरी न हो,** तब वह तुरन्त अपना **भरोसा बदल लेते हैं तथा किसी दूसरे की संगति करने लगते हैं।** इस प्रकार उन्होंनें '**परमात्मा**' अथवा साधु सन्तों को **परमार्थी 'दुकानदार' ही बना दिया है,** यदि एक दुकान पर सौदा न मिले तब

दूसरी पर जा पहुँचते हैं।

मायिकी जीवन की कामनाओं तथा गरजों की 'ग्राहकी' को पहचान कर अनेक बनावटी गुरूओं, अवतारों, साधु संतों ने **धार्मिक 'ठाठ बाठ' रचे हुए हैं —** जिनमें मानसिक, धार्मिक तथा आर्थिक **ग्राहकों की 'भीड़' लगी रहती है।**

इन **'द्वैतभाव वालों'** का मन तो माया में गलतान होता है, **परन्तु ऊपर से परमार्थ का भी दम भरते हैं:** इस प्रकार ये लोग **पाठ-पूजा, कर्म क्रिया तथा संगति करते हुए भी सच्चे आत्मिक मार्ग से 'वंचित' रहते हैं।** इनका **'परमार्थ'** —

अपने आप को **धोखा देना है**

पाखण्ड करना है

लोक दिखलावा है

जीवन दिशा से **वंचित रहना है**

जीवन व्यर्थ खो देना है

ईश्वर से विमुख होना है

दुखीआ दुसटु **दुबाजरा** तामे रंगहु कैहां होवै।
बाहरु दिसै उजला अंदरि मसु न धोपै धोवै।
संनी जाणु लुहार दी होइ दुमूहीं कुसंग विगोवै।
खणु ततो आरणि वड़े खणु ठंढी जलु अंदरि टोवै।
तुमा दिसे सोहणा चित्रमिताला विसु विलोवै। (वा.भा. गु. ३३/११)

दुखीआ दुसटू दुबाजरा बगुल समाधि रहै इक टंगा।
(वा.भा.गु ३३/१४)

इसलिए नास्तिक लोग, इन **द्वैतभाव वाले लोगों की अपेक्षा ज्यादा, बेपरवाह तथा सुखी हैं,** क्योंकि उनको **'ईश्वर' का हऊआ तंग नहीं करता** तथा धर्म की कट्टर साधनाओं से भी बचे रहते हैं।

कबीर जिनहु किछू जानिआ नही तिन सुख नीद बिहाइ।।
हमहु जु बूझा बूझना पूरी परी बलाइ।। (पृ. १३७४)

इन **'बनावटी धार्मिकों'** की हालत दयनीय है — क्योंकि **कट्टर धार्मिक हठ-साधनों के लिए मुसीबतें झेलते हुए भी उनकी आत्मिक उन्नति नहीं होती** तथा धार्मिक 'हउवे' के सहम में जकड़े रहते हैं।

दुनिया में ऐसे **'दोहरे मन वाले' परमार्थियों** की ही **'भरमार'** है। इनका —

'न इधर के रहे, न उधर के रहे'

'दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम',

वाला हाल होता है।

गुरबाणी में ऐसे दिखावटी परमार्थियों को यूं दर्शाया गया है —

दुबिधा लागे पचि मुए अंतरि त्रिसना अगि ।। (पृ१९)

पाखंडि भगति न होवई दुबिधा बोलु खुआरु ।। (पृ २८)

अंतरि कपटु भगउती कहाए ।।
पाखंडि पारबहमु कदे न पाए ।। (पृ ८८)

दूजै भाइ पड़ै नही बूझै ।।
त्रिबिधि माइआ कारणि लूझै ।। ..... (पृ १२७)

इहु मनु चंचलु वसि न आवै ।।
दुबिधा लागै दह दिसि धावै ।।
बिखु का कीड़ा बिखु महि राता बिखु ही माहि पचावणिआ ।।
(पृ १२७)

दुबिधा विचि बैरागु न होवी जब लगु दूजी राई ।। (पृ ६३४)

इसलिए ऐसे **'दुविधा भरे परमार्थियों'** अथवा **दुविधा वाले मनुष्यों की संगति को 'सत्संग' या 'साध संगति' नहीं कहा जा सकता** — परन्तु दुनिया में ऐसी **'दुविधापूर्ण संगति' का ही बोल बाला तथा व्यवहार है।** जिस कारण हमारा मानसिक तथा परमार्थिक **जीवन गिरावट की ओर जा रहा है।**

दुखीआ दुसटु दुबाजरा जाण रुपईआ मेखी सोई।
विगड़ै आपि विगाड़ै लोई । (वा. भा.गु. ३३/९)

कई सज्जन सत्संग में जाते तो हैं, परन्तु उनका मन दूसरों के अवगुणों की **'परख'** में लगा रहता है। वे अन्य सत्संगियों के कपड़े, श्रृंगार, बैठने उठने, हरकतों तथा बोल चाल की ओर ध्यान रखते हैं तथा **'नुक्ताचीनी'** ही करते रहते हैं तथा लोगों पर आरोप लगाने के लिए तत्पर रहते हैं। इस प्रकार संगति में लोगों के 'अवगुण' खोजने तथा **जख्म कुरेदना ही** उनका कर्तव्य या कर्म बन जाता है।

ऐसे लोग सत्संग में **आत्मिक लाभ लेने की अपेक्षा** अपने 'आत्मन' अथवा 'आत्मा' को और मलिन करते जाते हैं तथा 'ईश्वर' से और अधिक दूर होते जा रहे हैं व अपना जीवन व्यर्थ खो रहे हैं।

कई सज्जन 'सत्संग' में अपने दिमागी ज्ञान के **सींग तीखे** करने आते हैं — ता कि वे अपने जैसे किसी अन्य दिमागी पहलवान को ललकार सकें तथा **'बाल की खाल' उतारने** के क्षेत्र में जीत प्राप्त कर के 'वाह-वाह' की डिग्री हासिल करें।

संगति में थोड़ा-बहुत, अधूरा-फोकट ज्ञान अर्जित करके अपनी दिमागी क्लासें लगाना शुरू कर देते हैं तथा भोली-भाली संगत को पीछे लगा कर 'गुरूडम' की रचना करते हैं। इस प्रकार 'क्लासें' लगाने से उन्हें 'वाह-वाह' की प्रशंसा मिलती है तथा अहम् को चारा डलता है। ऐसे बनावटी ज्ञानी संगति में सच्चा पवित्र आत्मिक लाभ नहीं ले सकते।

कई स्थानों पर देखा गया है कि कई सत्संगी गुरुद्वारे जा कर दरबार सहिब के अंदर कीर्तन-कथा सुनने की अपेक्षा बाहर ही टोलियों में 'गप्प शप्प' करते रहते हैं। गुरुद्वारे के अंदर जा कर दरबार साहिब की उपस्थिति में लाभ नहीं लेते। इन्होंने गुरुद्वारे को social club ही समझा हुआ है।

कई गुरुद्वारों में पाठ या कीर्तन हो रहा होता है — परन्तु दूसरी ओर कुछ 'टोलियों' को कोनों में बैठ कर 'पार्टीबाजी' की चर्चा करते देखा गया है। यह 'सत्संग' का **'अपमान'** है तथा सत्संग के वातावरण में विघ्न डालना है। ये सत्संग से **लाभ** लेने की अपेक्षा उल्टा **पाप** कमाते हैं।

(क्रमशः.....)